''राजतरङ्गिणी का साहित्यिक महत्त्व''

डॉ. तारेश कुमार शर्मा
वरिष्ठाध्यापक (संस्कृत)
रा.व.मा.वि. लिबासपुर, दिल्ली

राजतरङ्गिणी कल्हण द्वारा रचित एक संस्कृत ग्रन्थ है। राजतरङ्गिणी का शाब्दिक अर्थ है-'राजाओं की नदी', जिसका भावार्थ है-'राजाओं का इतिहास' या 'समय-प्रवाह'। यह कविता के रूप में है। इसमें कश्मीर का इतिहास वर्णित है, जो महाभारत काल से आरम्भ होता है। इस पुस्तक के अनुसार कश्मीर का नाम 'कश्यपमेरु' था जो ब्रह्मा के पुत्र ऋषि मरीचि के पुत्र थे।

राजतरङ्गिणी एक निष्पक्ष और निर्भय ऐतिहासिक कृति है। स्वयं कल्हण ने राजतरङ्गिणी में कहा है कि एक सच्चे इतिहासलेखक की वाणी को न्यायाधीश के समान राग-द्वेष विनिर्मुक्त होना चाहिए, तभी उसकी प्रशंसा हो सकती है-

श्लाघ्यः स एव गुणवान् रागद्वेषबहिष्कृता।
भूतार्थकथने यस्य स्थेयस्यैव सरस्वती।।

कल्हण का कवित्व-

राजतरङ्गिणी इतिहास ग्रन्थ तो है ही, साथ में श्रेष्ठ काव्य भी। कवि इतिहासकार की अपेक्षा काव्यत्व में स्वयं को निमज्जित होते हुए देखते हैं, क्योंकि वे (कवि) यथार्थ कथन का भी अपनी रसोचित आलंकारिक उक्तियों से प्रत्यक्षायमाण कर सकते हैं। इसलिए निर्माणशाली होने के कारण कवि प्रजापति के समकक्ष ठहरता है-

कोऽन्यः कालमतिक्रान्तं नेतुं प्रत्यक्षतां क्षमः।
कविं प्रजापतिं त्यक्त्वा रम्यनिर्माणशालिनः।।

कविकर्म की श्रेष्ठता बताते हुए कल्हण पुनः कहते हैं कि-''जिन प्रतापी राजाओं की भुजच्छाया में पृथ्वी सर्वदा निर्भय और सुरक्षित रहीं, उन राजाओं पर यदि कवियों का अनुग्रह न होता तो उन्हें कौन याद कर पाता। सचमुच

स्वभावतः महान् कविकर्म सर्वोत्कृष्ट है। वह कवि के महनीय गुणों से पूर्ण परिचित है। वह जानता है कि सुकवि की वाणी अमृत रस का भी तिरस्कार करने वाली होती है। अमृत के पीने से केवल पीने वाला ही अमर बनता है, परन्तु कवि की वाणी दोनों के (अपने तथा अपने वर्णित पात्रों के) यशस्वी शरीर को अमर बना देती है-

वन्द्यः कोऽपि सुधास्यन्दास्कन्दी स सुकवेर्गुणः।
येन याति यशःकाये स्थैर्यं स्वस्य परस्य च ।।

कविकर्म की महत्ता का प्रतिपादन करता हुआ कवि कह रहा है, कि अपने प्रताप से भूमण्डल को निर्भय करने वाले राजाओं का नाम तथा काम कहाँ रहता है? यदि कवि की वाणी उनके चरित्र का रम्य विवरण प्रस्तुत नहीं करती-

भुज-वनतरुच्छाया येषां निषेव्य महौजसां,
जलधिरशना मेदिन्यासीदसावकुतोभया।
स्मृतिमपि न ते यान्ति क्ष्मापा विना यदनुग्रहं
प्रकृतिमहते कुर्मस्त्वस्मै नमः कविकर्मणे।।

इसी बात का समर्थन करते हुए कवि पुनः कहता है कि यदि कवि न हो तो राजाओं का नाम और यश दोनों समाप्त हो जाएँ, उसका काव्य ही राजाओं के यश को अजर-अमर बना देता है, उनकी एक उक्ति उद्धृत है-

येषां सन्निभ कुम्भ शायितपदा येऽपि श्रियं लेभिरे।
येषामप्यवसन्पुरा युवतयो गेहेष्वहश्चन्द्रिकाः।।
ताँल्लोकोऽयमवैति लोकतिलकान् स्वप्नेऽप्यजातानिव।
भ्रातः सत्कविकृत्य किं स्तुतिशतैरन्धं जगत्त्वां विना।।

अर्थात् लोकवन्द्य जिन राजाओं के चरण हाथियों के मस्तक पर पड़ते थे, जिन्होंने राजलक्ष्मी प्राप्त की थी, जिनके राजभवन में सुन्दरी युवतियाँ दिन में ही चाँदनी छिटकाया करती थीं, उन राजाओं का यह संसार स्वप्न में भी उत्पन्न नहीं माना गया (क्योंकि कवियों द्वारा उनके विषय में कोई उल्लेख नहीं हुआ है) हे बन्धु के समान कवि के सत्काव्य! तुम्हारी शतशः स्तुतियाँ करें तो भी कम है, अधिक क्या कहें, जगत् तुम्हारे बिना अन्धा है।

राजतरङ्गिणी में तात्कालिक समाज

कवि ने तात्कालिक राजाओं की विलासिता, नृशंसता और मूर्खता का खुल कर चित्रण किया है। इस समय के नरेश, दुर्लभ मृगनयनियों को प्राप्त करने में, घोड़ों की खरीद-फरोख्त में तथा विट और वैतालिकों के द्वारा अपनी प्रशंसा करवाने में ही अपने धन का अपव्यय कर डालते थे। प्रजारक्षण में विनियुक्त उनका सम्पूर्ण समय रूठी कामिनियों को मनाने में और नौकरों के साथ शिकार करने में ही बीत जाता था।

अपनी युक्तियों में तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों से उद्भृत अनेक मार्मिक चित्र कवि ने उपस्थित किए हैं, जिनमें अनुभूति और संवेदना की निश्चल अभिव्यक्ति हुई है। राजतरङ्गिणी समाज के उच्चस्तरीय राजघरानों के यथार्थ चित्र को काव्यात्मक शैली में प्रस्तुत करने वाला एक प्रामाणिक इतिहासग्रन्थ है। इस विशालकाय ग्रन्थ में कतिपय प्रसिद्ध राजाओं और मन्त्रियों के चरित्र भी लेखबद्ध किये गये हैं, क्योंकि सभी राजाओं और मन्त्रियों के चरित्र की समीक्षा करना एक दुष्कर और दुःसाध्य कार्य हो जाता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में कश्मीरी राजाओं, मन्त्रियों, रानियों की सदाशयता, अपथगामिता, सदाचार-दुराचार, अर्थशुचिता, कामशुचिता तथा अशुचिता, वीरता, कायरता, सुनियोजित षड्यन्त्र, संयम, विलासिता, परोपकार, परद्रोह, धर्माचरण, अधर्माचरण आदि सभी विशेषताओं की झलक मिल जाती है। कल्हण हर्ष की राज्यसभा में चँवर डुलाने वाली, ताम्बूल का बीड़ा देने आदि सेवा में रत युवती ललनाओं के सौन्दर्य का आकर्षक वर्णन करता है। यथोक्तम्-

कर्पूरोद्धूलनस्मेरा भ्रमन्त्यस्तरलभ्रुवः।
ब्रभुराश्रितपुंवेषा झषाङ्कच्छलदङ्कताम्।।

इसका अर्थ है कि वे ललनाएँ जब कभी राजसभा में पुरुषवेश में आ जाती थीं, तो साक्षात् मीनकेतन कामदेव के उपस्थित हो जाने का भ्रम हो जाता था। कवि ने राजा जयापीड़ के कायस्थों का वर्णन धूर्तता के साथ किया है। राजा जयापीड़ के कायस्थ मंत्रियों ने राजा को धन का लोभ देकर प्रजा पर सीमा से पटकर लगवा दिया और उसे निर्दयतापूर्वक लिया गया। इन कायस्थों ने कहा- राजन्! धन के लिए आप व्यर्थ ही दिग्विजय करने का कष्ट क्यों उठाते हैं। अपने मण्डल को ही दण्डित कर धन इक्ट्ठा कीजिए। शिवदास आदि ऐसे कायस्थों के कहने से राजा धन के लोभ में लिप्त हो गया, और उसे कायस्थों का मुखापेक्षी होना पड़ा।

चक्रवर्मा के मारे जाने पर उसके उत्तराधिकारी पुत्र ने भी पापी कायस्थों की सलाह पर प्रजा को बहुत पीड़ित किया था-

डामरैर्लुण्ठितो देशः प्रणाशे चक्रवर्मणः।
उत्थाप्य पापान् कायस्थान् तेन भूयोऽपि दण्डिताः।।

क्षेमेन्द्र के बाद कल्हण ने ही तो सामयिक समाज पर व्यंग्य कस कर संस्कृत साहित्य की एक भारी कमी को पूरा करने में योग दिया है। कल्हण ने ब्राह्मणों की बहुत खिल्ली उड़ायी है। उत्पल (अवन्तिवर्मन्) कुल का नाश हो जाने पर नये राजा की खोज में गोकुल मन्दिर में ब्राह्मणों की परिषद् बैठी, ये ब्राह्मण क्या थे, बिना सींग के बैल थे, अपने शरीर पर मोटे कम्बल ओढ़े थे, धुँए से जली दाढ़ी वाले उन ब्राह्मणों ने देर तक विचार किया पर कोई निर्णय न कर सके, किसी के मस्तक पर राज्याभिषेक का जल नहीं छिड़क सके, हाँ उनके भाषण से उड़ने वाले थूक से उनकी दाढ़ियों का अभिषेक अवश्य हो गया।

प्रस्तुत ग्रन्थ में कवि ने केवल राजनीतिक रूपरेखा न खींच कर सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश की झलकियाँ भी प्रस्तुत की हैं। मातृगुप्त, प्रवरसेन, नरेन्द्रप्रभ और प्रतापादित्य तथा अनंगलेखा, मंख और दुर्लभवर्धन (तरंग-3) अथवा चन्द्रापीड़ और चमार (तरंग-4) के प्रसङ्गों में मानवविज्ञान के मनोरम चित्र झिलमिलाते हैं। इसके अतिरिक्त बाढ़, आग, अकाल, महामारी, आदि विभीषिकाओं तथा धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक उपद्रवों में मानव स्वभाव की उज्ज्वल प्रगतियों एवं कुत्सित प्रवृत्तियों के साभिप्राय सङ्केत भी मिलते हैं।

राजतरङ्गिणी में सूक्ति-सन्निवेश

राजतरङ्गिणी में स्थान-स्थान पर सूक्तिमुक्ता प्रसविनी पद्यसूक्तियाँ बिखरी पड़ी हैं, जिनमें कवि के संघर्षमय, प्रौढ़ जीवन का अनुभव आभा बन कर झाँकता प्रतीत होता है। यदि शीलरूपी चिन्तामणि का विलगन हो गया, तो फिर जीवन में सारे दुर्गुण क्रमशः किस प्रकार आते-जाते हैं। इसका वर्णन देखिए-

प्रागुन्मीलति दुर्यशः सुविषमं गुह्योऽभिलाषस्ततो,
धर्मः पूर्वमुपैति संशयमथो श्लाघ्योऽभिमानक्रमः।
सन्देहं प्रथमं प्रयात्यभिजनं पश्चात्पुनर्जीवितं,
किं नाभ्येति विपर्ययं विगलने शीलस्य चिन्तामणेः।।

राजतरङ्गिणी के रसास्वादन में एक सूक्ति बड़ी ही स्पृहणीय है-

तदमन्दरसस्यन्दसुन्दरेयं निपीयताम्।
श्रोत्रशुक्तिपुटैः स्पष्टमङ्गं राजतरङ्गिणी।।

अर्थात् सुहृदवर! शान्त सुन्दर रसधारयुक्त इस राजतरङ्गिणी का अपने कर्णशुक्तिपुटों (सुतहियों) द्वारा आनन्दपूर्ण उन्मुक्त भाव से परिपूर्ण रसास्वादन कीजिए। (शुक्तिपुट- इस शब्द का साधारण अर्थ होता है-सीप की खाल या सुतुही। शुक्तिपुट तरल पदार्थ पीने के काम में आता है।)

जीवन की निस्सारता और काव्य का अक्षर विन्यास इन दोनों का मंजुल समन्वय देखने लायक है-

यान्यक्षराण्यन्तरेण वाच्यं वक्तुं न पार्यते।
का गतिस्तदुपदाने मर्यादोल्लङ्घनं विना।।

अर्थात् जिन अक्षरों को कहे बिना अभिप्राय व्यक्त नहीं होता, उसे प्रकट करने में मर्यादा उल्लङ्घन के अतिरिक्त और कौन गति है? स्वभाव से कामुक नारी को नियंत्रित करने में कौन समर्थ है? इस हृदयावर्जक पंक्ति का सुन्दर सन्निवेश अवश्य ही अवलोकनीय है-

निसर्गतरलां नारीं को नियन्त्रयितुं क्षमः।
नियन्त्रेण किं वा स्याद्यत्सतां स्मरणोचितम्।।

अर्थात् निसर्ग तरला नारी को नियंत्रित करने में कौन समर्थ है? अथवा नियंत्रण से क्या होगा, जो कि सज्जनों के लिए स्मरणीय है।

इस प्रकार प्रस्तुत काव्य में अनेक प्रकार की सूक्तियों का सुन्दर विच्छित्तिपूर्वक विन्यास कवि के द्वारा प्रसङ्गानुसार किया गया है।

भाषा और शैली

राजतरङ्गिणी काव्यदृष्टि से भी एक महार्घ रत्न है, जिसकी प्रभा आज भी उतनी ही आनन्ददायिनी है तथा जिसकी वर्णनशैली सहृदयों को आज भी अपनी सरलता और सरसता से सद्यः आवर्जित कर रही है। सहस्रों वर्षों की कालावधि में उत्पन्न, भिन्न-भिन्न शील-स्वभाव तथा इतिवृत्त वाले विविध नरेशों का वर्णन होने के कारण इसकी

शैली में सतत गत्वरता और एक प्रकार की सामासिकता है। आलम्बन-उद्दीपन के रूप में सोद्देश्य किये गये प्राकृतिक वर्णनों का वैसा चमत्कार तो नहीं मिलता, परन्तु प्रसङ्गानुसार तात्कालिक घटनाओं के उचित सन्निवेश तथा इतिवृत्त की पीठिका के रूप में प्रकृति के चित्रमय वर्णनों की उपलब्धि यहाँ देखी जा सकती है।

कल्हण वाल्मीकि तथा व्यास के काव्यरत्नों से पूर्ण परिचित तथा प्रभावित हैं। प्रथम तरङ्ग के अन्त में राजा युधिष्ठिर के दुःखद अन्त का वर्णन हो (1/368), या द्वितीय तरङ्ग में अधिक तुषारपात के कारण पड़े दुर्भिक्ष का वर्णन हो (2/19), भिक्षाचर की कष्टप्रद मृत्यु और लोहर-वंश की समाप्ति (8/1702), उच्चल की हत्या (8/309) आदि के वर्णन मार्मिक और प्रभाव उत्पन्न करने वाले हैं। सप्तम तरङ्ग में जब कल्हण हर्ष की आकृति और विशिष्टताओं का वर्णन करते हैं, तो रामायण की शैली अपना लेते हैं-

प्रसन्नसिंहविप्रेक्षी नीचश्मश्रुच्छटांचितः।
वृषस्कन्धो महाबाहुः श्यामलोहितविग्रहः।।

व्यूढवक्षो क्षाममध्यो मेघघोषगभीरवाक्।
सोऽमानुषाणामपि तत्प्रतिभा-भङ्गकार्यभूत्।।

अर्थात् वह राजा प्रसन्न सिंह के समान अपनी आँखें घुमा कर देखता था, उसकी लम्बी दाढ़ी शोभायुक्त थी, उसके कन्धे सांड के समान पुष्ट थे, उसकी भुजाएँ लम्बी थीं, उसके शरीर का रंग काला और लाल मिश्रण से युक्त था, चौड़ी छाती, पतली कमर, वज्र के समान गम्भीर आवाज से युक्त उस राजा के सामने देवता भी अपनी प्रतिभा खो बैठते थे।

छन्द-अलंकार

कल्हण अपनी कविता को अलंकारों की सजावट, शब्दों के चमत्कार तथा चाकचिक्य से कोसों दूर रखता है। उसके काव्य में एक विलक्षण सरलता तथा हृदयाकर्षण करने वाली साक्षात् वृत्तिता है। कल्हण की कविता वर्णनात्मिका है, परन्तु उसमें पर्याप्त गति है, मनोहरता है और सबसे अधिक है लेखक की स्वतः अनुभूति का अंकन, जो उसमें जीवनशक्ति डालने में सर्वथा समर्थ हुआ है। उसका काव्य बाण तथा बिल्हण के काव्यों के प्रभूत आलंकारिक वैचित्र्य से कहीं अधिक मनोहर और हृदयावर्जक है। तथ्य यह है, कि कल्हण की अपनी एक विशिष्ट शैली है, जिसमें अर्थ की अभिव्यक्ति ही प्रधान लक्ष्य है, घटना का अनुभूतिपूर्ण विवरण ही मुख्य उद्देश्य है।

राजा तारापीड़ के दुष्कर्मों का अन्त हुआ-ब्राह्मणों के ऊपर आक्रमण करने से और अपनी मृत्यु से। इस वर्णन में अग्नि और मेघ का दृष्टान्त बड़ा ही सुन्दर तथा रुचिकर है। यथोक्तम्-

योऽयं जनापकरणाय श्रयत्युपायं तेनैव तस्य नियमेन भवेद् विनाशः
धूपं प्रसौति नयनान्ध्यकरं यमग्निर्भूत्वाम्बुदः स शमयेत् सलिलैस्तमेव।।

संसार की असारता का निरूपण कवि ने इस पद्य में दिखाया है, कि कोई व्यक्ति दूसरे के अपकार के लिए जिस उपाय की सृष्टि करता है, उसका विनाश उसी उपाय से होता है। अग्नि आँखों को अन्धा करने वाले जिस धूम को उत्पन्न करती है, वही धूम मेघ बन कर जल द्वारा उसी अग्नि को शान्त कर देता है।

इस प्रकार सजीव उपमाओं और दृष्टान्तों से कवि ने अपने कथ्य का समर्थन किया है। कवि ने अलंकारों का प्रयोग सहज और अकृत्रिम रूप से किया है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति, दृष्टान्त, दीपक आदि अर्थालङ्कारों तथा अनुप्रास आदि शब्दालंकारों का गुम्फन स्वाभाविक रूप से उपस्थापित किया है। कश्मीरवर्णन में यह उत्प्रेक्षा कितनी रमणीय है-

असन्तापाहतिं जानन् यत्र पित्रा विनिर्मिते।
गौरवादिव तिग्मांशुर्धत्ते ग्रीष्मेऽप्यतीव्रताम्।।

पिता कश्यप जी के द्वारा स्थापित किए गए कश्मीरमण्डल को ताप देना उचित नहीं है, मानो यह सोच कर वहाँ ग्रीष्म में भी सूर्य अपनी किरणों में तीखापन नहीं लाते।

अल्पापकारमपि पार्श्वगतं निहन्ति, नीचो हि दूरगमहागसमप्यरातिम्।
श्वा निर्दशत्युपलमन्तिकमापतन्तं तत्त्यागिनं न तु विदूरगमुग्ररोषः।।

अर्थात् ''वह नीच राजा निकटवर्ती मनुष्य की हत्या, अल्प अपकार करने पर भी कर देता है, जबकि अपने दूरस्थ शत्रुओं के महापराधी होने पर भी कुछ नहीं करता। कुत्ता क्रोध में आकर अपने ऊपर फेंके गये पत्थर को तो दाँत से काटता है, किन्तु उन पत्थरों को फेंकने वालों का कुछ नहीं बिगाड़ता है।'' यहाँ दृष्टान्त देकर काव्य-सौन्दर्य और इतिहास-सत्य का सुन्दर समन्वय कल्हण ने किया है।

अनुष्टुप् छन्द में ही समस्त ग्रन्थ की रचना है, परन्तु स्थान-स्थान पर वसन्ततिलका, हरिणी, शार्दूलविक्रीडित

जैसे बड़े छन्दों का भी प्रयोग रुचिकर तथा शैली को मंजुल बनाने के लिए किया गया है। वैदर्भी रीति के प्रयोग में, स्निग्ध काव्य शैली में कश्मीरी राजाओं का संघर्षमय जीवन चित्रित करने में तथा सामान्य जनता के साथ प्रचुर सहानुभूति दिखलाने में राजतरङ्गिणी भारतीय दृष्टि से आदर्श इतिहास प्रस्तुत करने में समर्थ है। उसकी यही विशेषता भारतीय साहित्य में कल्हण के अपूर्व कर्तृत्व को उपस्थापित करती है।

रस

हर्ष की कुटिलता तथा दुष्टता को उन्होंने अपनी आँखों से देखा था। उच्चल तथा सुस्सल के परस्पर संघर्ष एवं मारकाट को। फलतः जगत् के व्यापारों से उन्हें नैसर्गिक उपरति हो गयी थी। वे आद्य इतिहास 'महाभारत' की भांति 'राजतरङ्गिणी' का अङ्गी रस शान्त मानते हैं। कल्हण एक दार्शनिक की भाँति संसार की क्षणभंगुरता पर विचार करते हुए काव्यशास्त्रीय दृढ़ता से शान्त रस की सर्वोत्कृष्टता सिद्ध करते हैं-

क्षणभङ्गिनी जन्तूनां स्फुरिते परिचिन्तिते।
मूर्धाभिषेकः शान्तस्य रसस्यात्र विचार्यताम्।।

कल्हण को दैव की महिमा पर अटूट विश्वास था, इसलिए उन्होंने विविध सांसारिक घटनाओं में विधाता की इच्छा को कारण माना है और शान्तरस का समर्थन किया है। पुनर्जन्म, कर्मफल, पुण्य-पाप आदि दार्शनिक विषयों में उनकी दृढ़ आस्था थी।

राजतरङ्गिणी का महत्त्व

कल्हण की ऐतिहासिक दृष्टि अर्वाचीन इतिहासवेत्ता की शोधक दृष्टि के समान है, जो अपने उपकरणों तथा साधनों को पर्याप्त परीक्षण के अनन्तर ही ग्रहण करती है। समीक्षकों ने कहा है कि क्षेमेन्द्र की 'नृपावली' कवि की रचना होने से रमणीय अवश्य थी, परन्तु अनवधानता के कारण इसका कोई भी अंश दोष विरहित नहीं था-

केनाप्यनवधानेन कवि-कर्मणि सत्यपि।
अंशोऽपि नास्ति निर्दोषः क्षेमेन्द्रस्य नृपावलौ।।

परन्तु कल्हण खरा निष्पक्ष ऐतिहासिक था। कश्मीरी होने पर भी कल्हण कश्मीरियों की भीरुता तथा मिथ्याभाषण, संग्राम से पलायन-वृत्ति, परस्पर कलह तथा विद्रोह, पक्षपात तथा दुराग्रह, संघर्ष तथा संग्राम, क्षुद्रता

तथा हृदयदौर्बल्य के विवरण देने में कभी नहीं चूकता। ब्राह्मणों के दोषों को बतलाने तथा निकालने में भी वह पराङ्मुख नहीं होता।

'श्रीकण्ठचरितम्' के लेखक मंखक ने कवि की प्रशंसा करते हुए लिखा है, कि कल्हण ने अपने काव्यदर्पण को इतना रमणीय तथा साफ रखा है, कि उसमें बिल्हण की प्रौढ़ोक्ति सद्यः प्रतिबिम्बित होती है-

तथापचस्करे येन निजवाङ्मयदर्पणः।
बिल्हणप्रौढिसंक्रान्तौ यथा योगत्वमग्रहीत्॥

संक्षेपतः हम कह सकते हैं कि राजतरङ्गिणी का ऐतिहासिक तथ्यों के साथ साहित्यिक, सांस्कृतिक और सामाजिक महत्त्व निष्पक्ष रूप में स्वीकरणीय है।

1 राजतरङ्गिणी, 1/7
2 तत्रैव, 1/4
3 राजतरङ्गिणी, 1/3
4 तत्रैव, 1/46
5 तत्रैव, तरंग-1/289-90
6 राजतरङ्गिणी, 7/1109
7 तत्रैव, 7/110
8 तत्रैव, 7/931
9 राजतरङ्गिणी, तरंग-5/439
10 पंचम तरंग ; उत्पल वंश की स्थापना अवन्तिवर्मा ने की थी। अवन्तिवर्मा का शासन काल 855 से 883 ई. तक था। अन्तिम राजा सूरवर्मन् द्वितीय था। ;पपद्ध द्दिा कश्मीर की प्रथम महिला शासिका थी। वह लोहार वंश की राजकुमारी तथा उत्पल वंश की शासिका रानी थी।
11 राजतरङ्गिणी, 7/316
12 तत्रैव, 1/24
13 तत्रैव, 3/309
14 तत्रैव, 3/515
15 राजतरङ्गिणी, 7/877-78
16 राजतरङ्गिणी, 4/125
17 तत्रैव, 1/41
18 राजतरङ्गिणी, 7/1208
19 तत्रैव 1/23
20 राजतरङ्गिणी, 1/13
21 श्रीकण्ठचरितम्, 25/79